पाप – पुण्य

भाग-१

सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी ।।
ततै सार न जाणी गुरू बाझहु ततै सार न जाणी ।।
तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी ।। (पृ. 920)

कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ।। (पृ. 962)

पाप पुंन वरतै संसारा ।।
हरखु सोगु सभु दुखु है भारा ।। (पृ. 1052)

गुरबाणी की इन पंक्तियों से पता लगता है कि 'पाप&पुण्य' केवल इस मायिकी संसार अर्थात त्रि&गुणों की ही कल्पना है। यह कल्पना तब तक रहेगी जब तक जीव अपने केन्द्र, तत्&रूप 'आत्मन' को नहीं पहचानता।

इस 'तत्&रूप' को गुरबाणी में 'आत्म', 'शब्द', 'नाम' आदि नामों द्वारा दर्शाया गया है। यह 'तत्' (essence) रूप है, इस की पहचान हमारी बुद्धि की पकड़ से परे है। इस सूक्ष्म अति सूक्ष्म 'तत्' को केवल आत्मिक अनुभव द्वारा ही जाना, बूझा, चीन्हा, सीझा तथा पहचाना जा सकता है। चौथे पद के दिव्य मंडल में, 'पाप&पुण्य' की कल्पना बनावटी तथा अनावश्यक है।

भिन्न&भिन्न देशों में, भिन्न&भिन्न लोगों की पाप – पुण्य की भिन्न&भिन्न कसौटियां हैं। उदाहरण के रूप में एक ओर 'जीव हत्या' को घोर 'पाप' समझा जाता है तो दूसरी ओर जीव की कुरबानी देना पुण्य ही नहीं अपितु परमार्थ&पूजा का विशेष अंग माना जाता है। हमारी अदालतों में जिस प्रकार कई श्रेणियों के अपराध माने जाते हैं, तथा उन अपराधों के तहत कारण तथा भावना (motivation) का ख्याल रखा जाता है, उसी प्रकार हमारे मानसिक पापों की भिन्न&भिन्न श्रेणियां हैं।

हमारे 'पाप' तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं —

1. **शारीरिक 'पाप'** — जिसमें चोरी&चकारी, मार&कुटाई आदि आ जाते हैं।

इन शारीरिक पापों की तह में, पहले मानसिक कल्पना आती है, शरीर तो केवल मनोकल्पना का 'हथियार' ही बनता है। वास्तव में ये मानसिक पापों की श्रेणी में ही गिने जा सकते हैं।

2. मानसिक पाप – यह **पाप** हमारे मन के बीमार होने के कारण या इसकी गिरावट के कारण, तुच्छ रुचियों से उत्पन्न होते हैं। इस में दोषी तो 'मन' होता है परन्तु 'सज़ा' शरीर को दी जाती है। ये सांसारिक कानून जो मानसिक पापों के लिए शरीर को सज़ा देते हैं, उचित नहीं।

ये मानसिक रोग हैं तथा इन रोगों का इलाज मानसिक तथा आत्मिक स्तर पर ही होना चाहिए। 'मानसिक बीमारी' का इलाज मानसिक सुधार से ही हो सकता है, ताकि वह पुनः पाप न करे। गुरमति अनुसार मानसिक सुधार का सबसे उत्तम तथा ठोस इलाज 'साधसंगति' के 'हस्पताल' में, बाणी तथा 'नाम अउखध' (औषधी) से सिमरन द्वारा, शीघ्र तथा निश्चित ही हो सकता है। अन्य समस्त इलाज अधूरे, अनिश्चित तथा फोकट हैं।

गुरबाणी में हमारे पापों के शीघ्र तथा पक्के इलाज के अति सुन्दर तथा सरल साधन दर्शाये गये हैं –

हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु सिमरत सभि किलविख पाप लहाती ।। (पृ. 88)

हरि का नामु कोटि पाप खोवै ।। (पृ. 264)

कोटि अपराध साधसंगि मिटै ।।
संत क्रिपा ते जम ते छुटै ।। (पृ. 296)

भगत जना के संगि पाप गवावणा ।। (पृ. 652)

कोटि पराध मिटे खिन भीतरि जां गुरमखि नामु समारे ।। (पृ. 670)

नाम लैत कोटि अध नासे भगत बाछहि सभि धूरी ।। (पृ. 672)

वडै भागि भेटे गुरुदेवा ।।
कोटि पराध मिटे हरि सेवा ।। (पृ. 683)

कोटि अपराधी संतसंगि उधरै जमु ता कै नेड़ि न आवै ।। (पृ. 748)

एकु धिआईऐ साध कै संगि ।।
पाप बिनासे नाम कै रंगि ।। (पृ. 900)

नामु लैत पापु तन ते गइआ ।। (पृ. 1142)

संत मंडल महि पाप बिनासनु ।। (पृ. 1146)

राम नाम रसि रहै अघाइ ।।
कोट कोटंतर के पाप जलि जाहि ।। (पृ. 1175)

साधू की जउ लेहि ओट ।।
तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ।। (पृ. 1196)

कटे पाप असंख नावै इक कणी ।। (पृ. 1283)

सभि कहहु मुखहु हरि हरि हरे हरि हरि हरे
हरि बोलत सभि पाप लहोगीआ ।। (पृ. 1313)

गुरबाणी में हमें इन **'पापों' से बचने की ताड़ना** यूँ की गई है –

अनिक पड़दे महि कमावै विकार ।।
खिन महि प्रगट होहि संसार ।। (पृ. 194)

जिसु पासि लुकाइदड़ो सो वेखी साथै ।। (पृ. 461)

जितु कीता पाईऐ आपणा सा धाल बुरी किउ धालीऐ ।।
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ ।। (पृ. 474)

तूं वलवंच लूकि करहि सभ जाणै जाणी राम ।।
लेखा धरम भइआ तिल पीड़े घाणी राम ।। (पृ. 546)

नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।। (पृ. 595)

लूक करत बिकार बिखड़े प्रभ नेर हू ते नेरिआ ।। (पृ. 704)

जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ ।।
पाप करत सुकचिओ नही नह गरबु निवारिओ ।। (पृ. 727)

करि करि पाप दरबु कीआ वरतण कै ताई ।।
माटी सिउ माटी रली नागा उठि जाई ।। (पृ. 809)

पाप करेदड़ सरपर मुठे ।। अजराईलि फड़े फड़ि कुठे ।।
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मगै बाणीआ ।। (पृ. 1019&20½

पापी का धरु अगने माहि ।।
जलत रहै मिटवै कब नाहि ।। (पृ. 1165)

कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।।
परगट भए निदान सभ जब पूछे धरम राइ ।। (पृ. 1370)

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ।।
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै ।। (पृ. 1376)

परमेश्वर ने अपनी **'मौज़'** में इस संसार की **रचना अपनी आज्ञा** द्वारा की तथा इसे चालू रखने के लिए अति सूक्ष्म, अटल, पूर्ण, नियम बद्ध असूल या **कानून बनाये हैं।** इन ईश्वरीय नियमों को बाणी में 'रज़ा', **'हुकुम'** या **भाणा कहा गया है ।**

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ।।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ।। (पृ. 1)

यह ईश्वरीय हुकुम अपने आप में इतना पूर्ण, भूल रहित, त्रुटि रहित, असीमित, लाभदायक तथा सुखदायी है कि इस में कभी **संशोधन या बदलाव** करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। जब यह ईश्वरीय **'हुकुम'**(Divine will) इतना पूर्ण, लाभदायक तथा सुखदायी है, तब जीवों को अपना जीवन सुखी तथा खुशहाल रखने के लिए, सम्पूर्ण रूप से **इस हुकुम के प्रवाह के 'सुर'** (in tune) **में ही बहते जाना चाहिए** तथा इस प्रकार 'आत्मिक रौं' के अधीन होकर **'भाणे'** में रहना चाहिए। यह 'हुकुम प्रत्येक जीव के **'साथ' 'भीतर'** ही लिखा हुआ है।

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिया नालि ।। (पृ. 1)

मनुष्य के अतिरिक्त, शेष समस्त योनियाँ इस 'अन्तर्गत' लिखे 'हुकुम' के **सुर** में जीवन व्यतीत करती हैं । परन्तु मनुष्य, अपनी बुद्धि के कारण, अपने आप को चतुर समझता है तथा ईश्वरीय **हुकुम से अनजान या लापरवाह होकर बेसुर** (out of tune) हुआ है। इसी कारण मनुष्य ही एकमात्र योनि है, जो **अपनी बुद्धि तथा अहम् के कारण** हर प्रकार के दुख तथा क्लेश भोगता हुआ **रसातल की ओर जा रहा है।** यह मनुष्य के लिए एक **गम्भीर समस्या** (serious tragedy) है, कि यह समस्त योनियों का **शिरोमणि** होता हुआ तथा अथाह बुद्धि व **विचार शक्ति का मालिक होता हुआ, ऐसी अधोगति को प्राप्त है।** इस पर बहुत अफसोस भी होता है तथा **हंसी** भी आती है।

वास्तव में इस **अन्तर्गत लिखे 'हुकुम' से बेसुर होकर ही, अपने अहम् के अधीन** पाँच चोर — काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार के शिकार होकर

ही आशा, मनशा, तृष्णा के **तुच्छ ख्याल** उत्पन्न होते हैं, जो सभी तुच्छ कर्मों तथा **'पापों' के मूल कारण हैं।**

इस का तात्पर्य यह हुआ कि हमारे **पापों का मूल तथा वास्तविक कारण, हमारा 'हुकुम' से विमुख या बेसुर होना ही है।** जब हम ईश्वरीय हुकुम के **सुर में होगें, तब कोई अवगुण हो ही नहीं सकते तथा** हम में से सदैव दैवीय गुण ही उत्पन्न होगें तथा सहज स्वभाव ही नेकी या पुण्य की रुचि होगी। दूसरे शब्दों में, **हुकुम से c&lj होना ही 'पाप' है तथा सुर में रहना ही 'पुण्य' है।**

सो सिखु सखा बंधपु है भाई जि गुर के भाणे विचि आवै ।।
आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै ।। (पृ. 601)

पापी के मारने को पाप महां बली है ।। (पृ. 10)

मनुष्य अपने भाणै में तुच्छ रुचियों के अधीन होकर **'पाप'** करता हुआ अपना मन इतना मलिन कर लेता है कि वह मैले मन द्वारा **'कर्म–बद्ध'** हो जाता है, तथा उससे **खुद ब खुद अपने आप 'पाप' होते रहते हैं** तथा अन्त में उसके **पापों की रुची अति दीर्घ** तथा गहरी होकर, उसके तन, मन तथा अन्तःकरण में धंस&बस&समा जाती है। तथा वह **अपने आप रसातल की ओर बहता जाता है** तथा अपने विनाश का कारण बनता है।

इसलिए ईश्वरीय हुकुम को बूझकर, **भाणे में 'सुर' होकर जीवन व्यतीत करने से ही हम सदा के लिए पापों से बच सकते हैं तथा 'लोक सुखी' एवं 'परलोक सुहेला' कर सकते हैं।**

परन्तु ईश्वरीय **हुकुम को बूझने के लिए तथा इसके भाणे में चलने के लिए गुरबाणी के मार्गदर्शन में सत्संग की सहायता द्वारा, नाम–सिमरण अभ्यास की आवश्यकता है।**

3. **आत्मिक पाप – भाणे में रहने वाले** भक्त, साधू, संत, गुरमुख दुनिया में कोई एक आध अति दुर्लभ ही होते हैं तथा अकाल पुरुष को ये **अति प्रिय** होने के कारण, वह इन **भक्तों का 'मान' तथा 'रक्षा' सदा ही करता आया है।**

हरि जुगु जुगु भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे ।। (पृ.451)

संतन दुख पाए तें दुखी ।।
सुख पाए साधुन के सुखी ।। (चौपई पा. 10)

जब कोई भूला हुआ मनमुख इन **महापुरुषों की निंदा करता है, तब अकाल पुरुष को दुख होता है** तथा उनकी यह दशा होती है –

संत जना की निंदा करहि दुसटु दैतु चिड़ाइआ ।। (पृ. 1133)
जिनि जिनि करी अवगिआ जन की ते तैं दीए रूढ़ाई ।। (पृ. 1235)

जो निंदा दुसट करहि भगता की हरनाखस जिउ पचि जावैगो ।।

(पृ. 1309)

इन निंदकों दोषियों की सज़ा त्रिगुणी नियमों (law of karma) के अतिरिक्त, अकाल पुरुष स्वयं भी देता है। **इन का उन महापुरुषों के, जिनकी निंदा की हो के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं है। उन्हे केवल वे महापुरुष ही माफ कर सकते हैं।**

संत का निंदकु महा हतिआरा ।।
संत का निंदकु परमेसुरि मारा ।। .....
संत के दोखी कउ अवरू न राखनहारु ।।
नानक संत भावै ता लए उबारि ।। (पृ. 280)

इसलिए हमें '**आत्मिक पापों**' **से बच कर रहने का विशेष ध्यान रखना चाहिए।**

इसके इलावा, एक और **आत्मिक पाप है** जो अज्ञानतावश हम सहज स्वभाव करते रहते हैं। **'आत्मा' को ऊँचा उठने अथवा प्रफुल्लित होने का अवसर** (chance) **भाग्य से मिलता है** तथा जब ऐसा अवसर मिले, तब उसका विरोध करना (opposition to the aspiring soul) **गम्भीर आत्मिक पाप है।**

सृष्टि में प्रत्येक वस्तु में **'विकास' करने की प्राकृतिक रुचि या हुकुम है।**

इसी प्रकार हमारी आत्मा भी **'विकसित'** होना चाहती है तथा अपने केन्द्र 'अकाल पुरुष' की ओर खिँचती जा रही है। जब ऐसी 'सुरति' या **आत्मा अपने विकास के लिए कोई उद्यम करती है**, तब उसे अनजान या भूले हुए लोग, **विरोध द्वारा दबाना या बदनाम करना चाहते हैं** तथा उस आत्मा के विकसित होने, फलने तथा **प्रफुल्लित होने में रोड़े अटकाते हैं।** इस प्रकार कई तथाकथित

साधु, संत तथा गुरु भी **भोली रूहों को भ्रम** (misguide) **तथा धोखे में डालकर जिज्ञासुओं का जीवन तबाह कर देते हैं।** इस प्रकार भी हम **आत्मिक पापों के दोषी होते हैं** तथा यह भी गम्भीर आत्मिक पाप है।

मानवता की समस्त समस्याएँ मनुष्य द्वारा अटल **ईश्वरीय नियमों अथवा 'हुकुम' के उल्लघंन से उत्पन्न होती हैं** तथा मनुष्य के कुमार्ग पड़ जाने की प्रवृत्ति ही उसको ईश्वरीय इच्छा अनुसार **'आदर्श मनुष्य' बनने से वंचित रखती है।**

यह समस्त तुच्छ रुचियों से उत्पन्न हुए **'पाप'** माया के भ्रम-भुलाव में **'अहम्' तथा मैं-मेरी का प्रतिबिम्ब या प्रकटाव हैं।**

विश्व में अशान्ति का मुख्य कारण यही है कि हम 'आध्यात्मिक' की अपेक्षा पदार्थिक अधिक हैं।

ईर्ष्या, द्वैत, नफरत तथा **निज-स्वार्थ** ही समाज को शान्ति तथा आनन्द से वंचित रखते हैं।

मनुष्य खुशी, शान्ति, हुलास, रस तथा **प्यार के बिना, रूखा-सूखा जीवन व्यतीत कर रहा है** क्योंकि वह अपनी **आत्मिक विरासत से अज्ञात है** तथा **ईश्वरीय प्रेम-मय 'जीवन रौं' से टूटकर** प्रीत-प्रेम-रस-चाव की **दिव्य सौगातों से वंचित रहता है।**

ज्यों-ज्यों **'साध-संगत' तथा 'नाम-सिमरण'** द्वारा हमारी वृत्तियाँ उपर उठ कर दैवीय होती जायेगीं तथा **'आत्मिक छुह' द्वारा सूक्ष्म तथा प्रबल** होती जायेंगी, हम अथवा **हमारा आत्मन** ईश्वरीय सुख, प्रेम, प्यार, रस, चाव वाला **दिव्य 'जीवन-रौं' के प्रवाह का माध्यम बन जायेगा।** इस प्रकार हमारा तन, मन, हृदय, समस्त 'दैवीय-गुणों' के प्रकाश तथा प्रकटाव के 'साधन' बन जायेंगे ।

गुरबाणी अनुसार कलयुग में यही 'पुण्य' है –

कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ।। (पृ. 962)

हमारे तन-मन-हृदय को **'आत्म-परायण', करके नाम का रंग चढ़ाना ईश्वरीय 'रज़ा' के अनुकूल है** तथा प्रत्येक जीव की प्रतिज्ञा तथा कर्त्तव्य है।

जब हमें कोई शारीरिक रोग होता है तो हम कोई दवा दारू करते हैं या शीघ्र ही डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर हमारे रोग की जाँच (diagnosis) करके रोग तथा उसका कारण (causation) खोजता व उपचार करता है।

परन्तु कई बार तपैदिक, कैंसर, कोढ़ आदि मूल रोगों का हमें **अहसास तथा पता ही** नहीं लगता व हम छोटे मोटे कष्ट को मामूली समझकर सहते रहते हैं या नीम॥हकीम से इलाज करवा के **समय बिता** देते हैं। इस का परिणाम यह निकलता है कि धीरे॥धीरे कुछ समय बाद यह रोग गम्भीर (serious) बन जाते हैं। इस प्रकार हम अपनी लापरवाही के कारण, अपने शारीरिक रोगों को बढ़ाकर खतरनाक बना लेते हैं तथा अपनी ही लापरवाही कारण अत्यन्त दुख॥क्लेश भोगते हैं।

ठीक इसी प्रकार हमारी **'मानसिक'** दशा है –

हमारी **तुच्छ रुचियों** में से तुच्छ तथा बुरे कर्म या पाप उत्पन्न होते हैं। बाहर की **कुसंगति** के प्रभाव तथा अन्तःकरण की रंगत की **'भड़ास' में से ही तुच्छ रुचियाँ उत्पन्न होती हैं।**

पिछले निम्न कर्मों तथा विचारों अनुसार ही अन्तःकरण की **रंगत** बनती है।

मानसिक 'रंगत' या भड़ास या तुच्छ रुचियों को मानसिक रोग कहा जाता है।

इन मानसिक रोगों का मूल कारण हमारा **'अहम्'** ही है।

माया के भ्रम॥भुलाव के अन्धकार में से ही **'अहम्' उत्पन्न होता तथा पलता है।**

माया के **भ्रम॥भुलाव** के 'अन्धकार' मे से ही तुच्छ रुचियाँ उत्पन्न होती तथा प्रवृत होती हैं।

अकाल पुरुष की **अनुपस्थिति** या **'भूल'** में से ही माया का भ्रम उत्पन्न होता है।

जहाँ ईश्वरीय **प्रकाश** है, वहाँ मायिकी **'भ्रम का अन्धकार'** नहीं रह सकता।

'प्रकाश' तथा 'अन्धकार' **एक ही समय नहीं हो सकते।**

'अन्धकार' प्रकाश की **'अनुपस्थिति' या 'गैरहाज़िरी'** का ही नाम है।

जब हम होते तब तू नाही, अब तूही मै नाही ।। (पृ. 657॥

उपरोक्त विचार से स्पष्ट है कि **अकाल पुरुष की 'भूल' ही हमारे समस्त मानसिक रोगों का मूल कारण है।**

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ।।
वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ।। (पृ. 135)

जब हमारा मन 'रोगी' होता है, तब उसका प्रभाव शरीर पर पड़ना अनिवार्य है। इस प्रकार बहुत सारे भयंकर रोगों का **मूल कारण, हमारे 'मानसिक रोग' ही हैं।**

इसी कारण गुरू साहिबान ने **'रोग'** शब्द के पहले 'सभे' विशेषण लगाकर यह बात दृढ़ करवायी है कि **परमेश्वर को भूलने से ही समस्त शारीरिक तथा मानसिक रोग लगते हैं ।**

रोगी मन में से मैली तथा **तुच्छ रुचियाँ** उत्पन्न होती हैं ।

बुरे रव्यालों से बुरे कर्म या पाप होते हैं।

तुच्छ रुचियों में से **बुरे रव्याल** उत्पन्न होते हैं ।

'जो मै कीआ सो मै पाइआ' के ईश्वरीय नियम अनुसार बुरे कर्मों का परिणाम दुख, क्लेश आदि भोगने पड़ते हैं तथा अपने पापों अनुसार ही हम **यम के वश पड़ते हैं।**

दूसरे शब्दों में हमारे —

बुरे रव्याल
तुच्छ रुचियाँ
मैला मन
मैला अन्तःकरण
बुरे कर्म
पाप
यम की फाँसी
यम की सज़ा
मानसिक रोग
शारीरिक रोग
दुख क्लेश
नरक

आदि दशाँए, त्रिगुण मायिकी मंडल की गँधली तथा **ज़हरीली मानसिक रंगत अथवा भड़ास** (vicious circle) **से ही उत्पन्न होती हैं, जिसका मूल कारण** (root cause) **परमेश्वर को 'भूलना' ही है।**

इस भूल में से ही 'अहम्' उत्पन्न होता है तथा अहम् के भ्रम/भुलाव के अन्धकार (darkness of illusive ego) में ही यह समस्त **त्रिगुण मायिकी – 'चक्र' उत्पन्न होता है, पलता तथा प्रवृत होता है,** जिस प्रकार अंधेरी कोठरी या गुफा में साँप, बिच्छु, मच्छर आदि उत्पन्न होते, पलते तथा प्रवृत होते हैं।

दुखु तदे जा विसरि जावै ।।
भुख विआपै बहु बिधि धावै ।। (पृ. 98)

तूं विसरहि तां सभु को लागू चीति आवहि तां सेवा ।। (पृ. 383)

आजकल **हमारे मन बहुत रोगी हो गये हैं,** जिस कारण **शारीरिक रोग भी बहुत बढ़ गये हैं** तथा इन रोगों के उपचार के लिए अनगिनत, नुस्खे, टीके, दवाईयाँ प्रचलित हैं तथा साथ ही डाक्टर, हकीम, हस्पताल भी अत्यधिक बढ़ गये हैं।

यहाँ तक कि प्रत्येक रोग के विशेष डाक्टर (specialist) बन गये हैं।

हम भी इतने चौकन्ने (alert) हो गये हैं कि थोड़ा सा दर्द या बुखार होते ही तुरन्त डाक्टर के पास दौड़ते हैं तथा अच्छे से अच्छा टीका लगाने के लिए कहते हैं। टीकों के साथ गोलियाँ भी दी जाती हैं, जिन्हे खाते/खाते ऊब जाते हैं। इन टीकों या गोलियों से यदि एक ओर कोई बिमारी कम होती है तब दूसरी ओर, अन्य बीमारियां (side effects) शुरू हो जाती हैं या आप्रेशन करवाना पड़ता है।

इस प्रकार हमारे शरीर के अन्दर **बीमारियों का चक्र** (vicious circle) चलता ही रहता है, जब तक **मृत्यु** हमारा छुटकारा नहीं करवाती।

इसी कारण गुरू साहिबान ने यह उच्चारण किया –

जो जो दीसै सो सो रोगी ।।
रोग रहित मेरा सतिगुरु जोगी ।। (पृ. 1140)

क्योंकि **यदि कोई शारीरिक रोग से बचा भी है तो 'मानसिक रोग' तो सभी को लगे हुए हैं।**

यह एक गंभीर समस्या (serious problem) है कि बावजूद चिकित्सा विज्ञान (medical science) की **इतनी उन्नति** तथा अनगिनत इलाज के साधनों के, हमारे **समस्त स्वास्थ्य का स्तर**, पिछले जमाने से बहुत गिर गया है। इस विषय पर बड़ी गहरी तथा दीर्घ विचार तथा गौर करने की आवश्यकता है।

पुरातन समय में लोग सीधे-सादे, भोले-भाले, दैवीय रुचियों वाले होते थे। उनके मन निर्मल, निष्कपट, निरोग, सेवा भाव तथा धार्मिक श्रद्धा भावना वाले होते थे तथा वह प्रकृति अनुसार **सादा तथा निश्छल जीवन व्यतीत करते थे,** जिस कारण उन्हे **मानसिक तथा शारीरिक रोग कम ही लगते थे।**

ज्यों-ज्यों विद्यक तथा वैज्ञानिक उन्नति होती गयी, हमारी सभ्यता (civilization) में परिवर्तन आता गया तथा साथ ही हमारे –

ख्याल
विचार
चिंतन
रुचियाँ
रूझान
ज्ञान
कर्म
धर्म
कथन
रहन-सहन

आदि हमारे जीवन के हर पक्ष में **क्रान्ति** आती गयी तथा हमारे **अहम् के भ्रम-भुलाव के अन्धकार द्वारा जीवन का ज्ञान तथा कद-कीमत बदलती गयी।**

फलस्वरूप, हमारे जीवन में –

स्वार्थ
तृष्णा
काम
क्रोध
लोभ
मोह
अहंकार
ईर्ष्या

द्वैत

वैर

विरोध

झगड़े

लड़ाईयाँ

आदि, तुच्छ मायिकी अवगुण बढ़ते गये, तथा हम मानसिक तथा शारीरिक रूप से **'रोगी' होते गये।** इस प्रकार हममें से **'दैवीय गुण' कम होते गये** तथा **'असुरी अवगुण' बढ़ते तथा तीव्र होते गये।** इस के फलस्वरूप हमारा मन, बुद्धि, चित्त, अन्तःकरण आदि मैले, गंधले हो गये तथा स्वार्थ, तृष्णा, अहंकार, ईर्ष्या, द्वैत आदि से **हमारा जीवन भ्रष्ट** (corrupt) **होता गया। इस मानसिक रोग का प्रभाव हमारे शरीर पर अवश्य पड़ना था,** जिस कारण शरीर के रोग भी बढ़ते गये। इस का प्रमाण हमारे समक्ष **प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है।**

ऐसे मलिन तथा **रोगी मन में से तुच्छ रुचियाँ तथा निम्न कर्म ही उत्पन्न होतें हैं,** जिस कारण संसार में स्वार्थ, वैर, विरोध, ईष्या, द्वैत, लूट, मार, छीना, झपटी तथा **अशान्ति बढ़ रही है** तथा **धोखा, बेईमानी, भ्रष्टाचार** का संसार में चारों ओर बोल बाला है। दूसरे शब्दों में, समस्त मानवता की रग – रग में **मानसिक ग्लानि का ज़हर** (vicious poison of corruption) **धंस, बस, समा चुका है** तथा यह **'छूत' की घातक बीमारी** (mortal epidemic) फैल गई है, जिससे झगड़े, लड़ाईयाँ, **अशान्ति समस्त विश्व में बढ़ती जा रही है।**

इस मानसिक ग्लानि की **'दुर्गन्ध' या 'भड़ास' हमारे –**

हृदय

मन

अन्तःकरण

समाज

समुदायों

देशों

मजहबों

नौकरी, पेशे

विभागों

सरकारों

धार्मिक स्थानों

विश्व

के 'रग&रग' में समा गई है, जिसका हमारे जीवन के हर पक्ष में प्रकटाव हो रहा है।

सांसारिक स्तर पर यू. एन. ओ. (U.N.O.) जैसी विश्व संस्थाएँ भी इस **'ग्लानि' को मिटाने या कम करने में निष्फल रही है।**

धर्म तथा धर्मस्थान भी इस जहरीली मायिकी ग्लानि के प्रभाव से नहीं बच सके।

इन दोनों श्रेष्ठ संस्थाओं पर मनुष्य को बहुत आशाएं थी की इस घातक मानसिक **रोग को रोक या ठहरा पाएंगी।** खेद तथा दुख की बात है कि ऐसी उच्च&श्रेष्ठ **'कोटि'** की संस्थाओं को भी इस मानसिक ग्लानि की 'लाग' (infection) लग रही है।

इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि ज्यों&ज्यों यू. एन. ओ. (U.N.O.) की कमेटियाँ बढ़ती गई तथा **धर्म स्थान तथा धर्म प्रचार बढ़ रहे हैं,** उसी अनुपात (in proportion) में संसार की ग्लानि (corruption) भी बढ़ती जा रही हैं तथा साथ ही **'पाप', अत्याचार, जुल्म, अशान्ति भी बढ़ती जा रही है।**

'मरज़ बढ़ती गई ज्यों&ज्यों दवा की।'

हमारी ग्लानि का चित्र गुरबाणी में यूँ खिंचा गया है –

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ ।।
कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ।। (पृ. 145)

भाई गुरदास जी ने भी इस ग्लानि पर यूँ व्यंग्य किया है –

कलि आई कुते मुही खाजु होइआ मुरदार गुसाई ।
राजे पापु कमांवदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई ।
परजा अंधी गिआन बिनु कूड़ कुसतु मुखहु आलाई।
चेले साज वताइदे नचनि गुरू बहुतु बिधि भाई ।
चेले बैठनि घरां विचि गुर उठि घरीं तिनाड़े जाई ।
काजी होए रिसवती वढी लै कै हकु गवाई।

इसत्री पुरखै दाम हितु भावै आइ किथाऊं जाई ।

वरतिआ पापु सभस जगि मांही । (वा. भा. गु. 1030)

आज कल यह **'मानसिक ग्लानि'** पहले से कई गुना अधिक बढ़ गयी है तथा हमारे जीवन की **'रग-रग' में घुल-मिल गयी है तथा ला-इलाज प्रतीत हो रही है।**

मानवता की इस भयानक तथा दुखदायी अधोगति (human tragedy) के **कारण तथा इलाज के विषय में गम्भीर विचार तथा खोज करने की अत्यन्त आवश्यकता है।**

गुरबाणी के प्रकाश में इस जरूरी तथा गंभीर (important and serious problem) विषय पर विचार करने का उद्यम किया जाता है –

जब शरीर को कोई कष्ट होता है, तब हम तुरन्त भाग दौड़ करते हैं, या डाक्टर के पास जाते हैं तथा जब तक कष्ट दूर न हो उपचार करवाते रहते हैं तथा आवश्यक परहेज़ भी करते हैं ।

मानसिक रूप से हम कई जन्मों से बीमार हैं तथा **मानसिक ग्लानि से 'लथ-पथ'** होकर अत्यन्त दुखी हो रहे हैं तथा **'हाय-हाय'** करके विलाप कर रहे हैं ।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

जनम जनम की इस मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ।।
रवंनली धोती उजली न होवई जे सउ धोवणि पाहु ।। (पृ. 651)

जिनी नामु विसारिआ बहु करम कमावहि होरि ।।
नानक जम पुरि बधे मारीअहि जिउ संन्ही उपरि चोर ।। (पृ. 1247)

पापी करम कमावदे करदे हाए हाइ ।।
नानक जिउ मथनि माधाणीआ तिउ मथे धम राइ ।। (प. 1425)

आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी ग्लानि वाले जीवन के प्रत्येक पक्ष में भाँति-भाँति के अत्यन्त दुखदायी **मानसिक तथा शारीरिक रोग भोगते हुए** तथा 'हाय – हाय' करने के **'बावजूद'** हमें अपनी गंभीर दयनीय, **दुखदायी**

अधोगति का –

अहसास ही नहीं

ख्याल ही नहीं

समझ ही नहीं

खोज ही नहीं

तथा ऐसी **'ज़हरीली ग्लानि' से बचने का कोई –**

उपाय

साधन

उद्यम

उपचार

तो क्या करना था ।

इसी प्रकार **'ग्लानि' के मूल कारणों** (root causes) को –

जानने

समझने

विचार करने

पहचानने

बूझने

खोजने

की आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती ।

याद रखने वाली आवश्यक बातें ये हैं –

1. गंभीर भयानक शारीरिक रोग तपैदिक, कोढ़, कैंसर आदि तो 'मृत्यु' अथवा **'शरीर त्यागने' के साथ ही हट जाते हैं।**

2. परन्तु तुच्छ रुचियाँ तथा मानसिक ग्लानि की बीमारियाँ तो **मृत्यु पश्चात् भी, जीव के साथ ही जाती हैं।**

3. ये मानसिक रोग, **भावी जन्मों में भी** 'चक्रवृद्धि ब्याज' (cumulative compound interest) की भाँति तीव्र होते जाते हैं, तथा हम स्वयं आमंत्रित **पापों के प्रभाव अधीन 'कर्मबद्ध' हो जाते हैं।**

4. साहूकारों के खातों की भाँति, हमारे कर्मों अथवा **पापों का 'खाता' या**

लेखा जन्मों तक 'समाप्त' (clear) **नहीं होता। जिस कारण यम की गुलामी हमारे गले से नहीं उतरती।**

5. इस हालत में यदि कोई पाठ, पूजा, कर्मकाण्ड आदि सा**धन करते भी हैं तो उसका थोड़ा बहुत 'फल' पिछले घोर 'पापों' के 'ब्याज' में कट जाता है तथा हमारा लेनदेन नहीं निपटता।**

करम धरम पाखंड जो दीसहि
तिन जमु जागाती लूटै ।। (पृ. 747)

फुंन दानु जो बीजदे सभ धरम राइ कै जाई ।। (पृ. 1414)

6. इस प्रकार जन्म जन्मों के पापों की ग्लानि से हमारा मन तथा अन्तःकरण **'कठोर'** हो जाता है तथा **गंदगी के कीड़े** की भाँति इस ग्लानि वाले जीवन में ही **'सन्तुष्ट या ढीठ'** (immune) हो कर त्रिगुण मायिकी मंडल **के अथाह विकट सागर, 'अंध घोर' संसार में गोते खाते** हैं।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

युगोंयुगों से गुरू, अवतार, गुरमुखों ने अपने व्यक्तिगत जीवन तथा बाणी द्वारा जीवों को इस **आत्मिक ग्लानि से बचने के लिए उपदेशों द्वारा समझाया तथा ताड़ना की है।**

गुरू साहिबान ने भी अपनी ईश्वरीय बाणी में यूं **ताड़ना की है।**

कोटि बिघन तिसु लागते जिस नो विसरै नाउ ।।
नानक अनदिनु बिलपते जिउ सुंञै घरि काउ ।। ॥ पृ. 522॥

अन काए रातडिआ वाट दुहेली राम ।।
पाप कमावदिआ तेरा कोइ न बेली राम ।।
कोए न बेली होइ तेरा सदा पछोतावहे ।।
गुन गुपाल न जपहि रसना फिरि कदहु से दिह आवहे ।। (पृ. 546)

मन रे संसारु अंध गहेरा ।।
चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा ।। (पृ. 654)

मन मेरे भूले कपटु न कीजै ।।
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै ।। (पृ. 656)

पाप करेदड़ सरपर मुठे ।। अजराईलि फड़े फड़ि कुठे ।।
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखवा मगै बाणीआ ।। 2।।
संगि न कोई भईआ बेबा ।। मालु जोबनु धनु छोडि वञैसा ।।
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ ।A3।।
खुसि खुसि लैदा वसतु पराई ।। वेखै सुणे तैरे नालि खुदाई ।।
दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि अगली गल न जाणीआ ।।4।।
जमि जमि मरै मरै फिरि जमै ।। बहुतु सजाइ पइआ देसि लमै ।।
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहै पराणीआ ।।5।

(पृ. 1019&20)

क्रमशः .....